मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् १९८७
प्रथमसंस्करण २०००
मूल्य -)

मिलनेका पता-गीताप्रेस, गोरखपुर।

श्रीहरिः

परिचय

लगभग डेढ़ साल पूर्व गोवर्धनपीठाधीश्वर १००८ जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीस्वामी भारतीकृष्णतीर्थजी महाराज अमृतसरमें दुरग्याना-सरोवरपर श्रीमद्भगवद्गीताकी कथा कहा करते थे और उसमें श्रोतारूपसे मैं भी कुछ समयके लिये, कुछ दिन तक जाता रहता था। कथाके प्रसंगमें जो महत्त्वपूर्ण उपदेश वह देते थे, उनमेंसे कुछको मैं नोट कर लिया करता था और उसी दिन सन्ध्या समय या जिस दिन उन्हें अथवा मुझे अवकाश मिलती मैं उन्हें दिखाकर अपने दामादसे उसमें रही हुई गलतियोंको उनसे ठीक करवा लेता था और इस प्रकार उनपर उनकी मुहर-सी लगवा लेता था।

यदि भगवद्भक्तोंने इसे पसन्द किया और फिर कभी मुझे ऐसा अवसर हाथ आया तो मैं सम्भवतः स्वामीजी महाराजके और भी उपदेशोंका संग्रह कर इसके द्वितीय संस्करणमें जोड़ दूँगा।

चौक लोहगढ़
अमृतसर

गुरांदित्ता खन्ना

ॐ

सदुपदेश

—खण्ड-परिछिन्नके पीछे पड़कर अखण्ड-अपरिछिन्नको भूल जाना ठीक नहीं है।

—अपने अन्दर सच्चिदानन्द है, पर उसे भोग नहीं सकते, इसीका नाम नपुंसकता है। हे अर्जुन! तुम क्लीव अर्थात् नपुंसक मत बनो!

—इस संसारमें हम उस यात्रीकी तरह हैं, जो हरिद्वार या किसी और स्थानको जाता हुआ मार्गमें किसी अन्य स्थानपर केवल इस अभिप्रायसे उतर जाता है कि चलो जरा इसे भी देख लें; परन्तु फिर उसपर इतना लट्टू हो जाता है कि अपने लक्ष्य-स्थानको ही भूल जाता है और सदा वहीं रहने लगता है।

—जो दब जाता है, संसार उसे ही दबाता है। जो नहीं दबता तथा स्वयं संसारको दबाया चाहता है तो संसार उससे निश्चय ही दब जाता है।

—संसारमें भयभीत न रहकर उसे अपने शासनमें रखना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते, वही दुर्बल-हृदयके व्यक्ति होते हैं।

—बड़े और छोटे आदमियोंमें यही भेद है कि छोटे आदमी किसी बातपर दृढ़ नहीं रहते और बड़े जो कुछ कहते हैं—जिस काममें हाथ लगाते हैं—उसपर पूरी तरहसे दृढ़ रहते हैं। कहा भी है—

प्रारम्भ ही नहीं विघ्न-भयतें अधम जन उद्यम तजैं ।
जे कराहिं ते कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं ॥
धरि लात विघ्न अनेकपै निरभय न उद्यम तें टरैं ।
जे पुरुष उत्तम अन्तमें ते सिद्ध सब कारज करैं ॥

—जो आदमी संसारमें चट्टानकी तरह दृढ़ रहता है, वही उत्तम है और जो दृढ़ नहीं रहता, वही नीच है ।

—दुर्बल-हृदयके क्षुद्र पुरुष संसारके छोटे-छोटे सुखोंके पीछे पड़कर बड़े सुख (सच्चिदानन्द) को भूल जाते हैं ।

—सद्‌गुरु शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर करके उसे ज्ञानवान् बनाता है, उसके चित्तकी अशान्ति मिटाकर उसे शान्तिस्वरूप बनाता है, उसके तमाम दुःख दूरकर उसे परम सुखी बनाता है और नीचेसे उठाकर उसे ऊपर पहुँचाता है ।

—इस शरीररूपी नौकाके टूटनेसे पहले ही पार होनेका प्रयत्न करना चाहिये । उसके बाद क्या होगा, कहाँ जन्म होगा, इसका कुछ भी ठिकाना नहीं है ।

—माया-शक्तिको अपने बलसे नहीं, प्रत्युत परमात्माके बलसे मारा जा सकता है, इसलिये परमात्माका आश्रय ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है ।

—क्षत्रियका कर्तव्य है कि यदि वह किसीकी रक्षा नहीं कर सकता, किसीको सहारा नहीं दे सकता तो कम-से-कम स्वयं तो किसीके ऊपर अपना बोझ न डाले और अपना निर्वाह तथा रक्षण तो स्वयं आप करे ।

—किसी कार्यमें न आसक्ति है और न किसीमें द्वेष है, मनुष्यमें जब यह गुण आ जाता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

—जो अपने अनुभव और आचरणसे करके नहीं दिखाता, उसके उपदेशोंसे कुछ भी नहीं बन सकता और वह सदा अपना तथा दूसरोंका अमूल्य समय ही नष्ट करता है।

—परमात्मा सबके अन्दर है। फिर एक कुमार्गमें जाता है और दूसरा सुमार्गमें, इसका क्या कारण है? कारण यह है कि सुमार्गमें जानेवाला अपना सब कुछ भगवान्को सौंप देता है और कुमार्गमें जानेवाला अपनी इन्द्रियोंको।

—कई लोग सद्गुरुको पारसकी उपमा देते हैं, पर वास्तवमें वह पारससे भी बढ़कर हैं, क्योंकि पारस तो लोहेको छूकर सोना ही बनाता है, अपने समान पारस तो नहीं बनाता, परन्तु सद्गुरु अपने शरणागत शिष्यका तमाम अज्ञान-मोह दूर करके उसे अपने समान बना देता है।

—जो औरोंको मान देता है, उसे इस लोक और परलोक दोनोंमें मान मिलता है।

—जो पलमें प्रसन्न और पलमें अप्रसन्न हो जाता है, उससे सदा डर ही लगा रहता है।

—जो बनानेवाला है, रखनेवाला है, हम उसे ही क्यों न प्रसन्न करें। संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो उसकी

दयासे हमें नहीं मिल सकती। वह कौन है ? सर्वशक्तिमान् परमात्मा ! अतः परमात्माकी ही पूजा करना योग्य है ।

एक ओर संसार है और दूसरी ओर परमात्मा है । जीव यदि संसारकी ओर लग गया, उसमें लिप्त हो गया तो दुःखोंमें—घोर दुःखोंमें फँस गया और यदि परमात्माकी ओर लग गया और उसके चरणोंमें लीन हो गया तो सच्चिदानन्दमय बन गया और उसके सारे दुःख-दारिद्रय सदाके लिये दूर हो गये ।

—जिस बातको छिपाना हो, उसे असत्यसे मत छिपाओ, मौनसे छिपाओ यह भगवान्‌का कथन है ।

—जब सत्य बोलनेमें हानि दीखे तो असत्य तो कदापि न बोले, क्योंकि वह तो पाप है । हाँ, उस दशामें चुप रहना श्रेयस्कर है ।

—परिवार-परिपालनके लिये व्यापार आवश्यक है, पर वह धर्मविरुद्ध कदापि नहीं होना चाहिये ।

—जो इच्छा हो वह भी धर्मके विरुद्ध न हो, और उसकी पूर्तिके जो उपाय हों वह भी धर्मके विरुद्ध न होने चाहिये ।

—हमारे देशके कई भागोंमें विशेषतः स्त्रियोंमें जो रोने-पीटनेका रिवाज़ है, वह धर्मके विरुद्ध है ।

—हम और किसीको कुछ न कहकर केवल उन्हें, जो धर्मशास्त्र और वेदान्तके सिद्धान्तोंको मानते हैं, कहते हैं कि किसीके मरनेपर रोना-पीटना धर्म और वेदान्तके विरुद्ध है तथा पाप है ।

—जो कर्म अपने नहीं हैं और जो आवश्यक भी नहीं हैं, उन्हें यदि हम तिलाञ्जलि नहीं देते तो वे हमारे श्रेयके मार्गमें रुकावट डालते हैं।

—अपने साधनमें लगो, दूसरोंकी निन्दामें जो व्यर्थ समय गँवाते हो, वह न गँवाओ। समय बड़ा मूल्यवान् है।

—जब ऐसी भक्ति, जिसमें सन्देहकी मात्रा तनिक भी न हो, प्राप्त हो जाती है तब फिर ज्ञानकी प्राप्तिमें कुछ भी देर नहीं रहती। भगवान् अपने भक्तको कभी अज्ञानी नहीं रहने देते।

—जैसे सत्त्व, रज और तम मिले हुए ही रहते हैं, पर जिसकी मात्रा अधिक होती है वही प्रधानरूपसे माना जाता है, वैसे ही कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और भक्तिकाण्ड भी मिले रहते हैं और जो जिसमें अधिक होता है वही प्रसिद्ध होता है।

—वेदान्तमें कहा है कि न तो जीनेकी इच्छा करो और न मरनेकी ही इच्छा करो। प्रारब्धसे आये हुए दुःख-सुखको समानरूपसे भोगते हुए सदैव आनन्दमें रहो और ऐसे नये काम मत करो, जिससे फिर योनिचक्रमें फँसना पड़े।

—कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये धर्मशास्त्रको देखना चाहिये, और यदि खुद न देख सके तो विद्वान् और रागद्वेषसे रहित किसी धर्मशास्त्रीसे पूछ लेना चाहिये।

—जो शक्ति चाहते हैं, उन्नति चाहते हैं तथा कल्याण चाहते हैं उन्हें धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि वे न स्त्रियोंको ठगें,

न दुःख दें, न उनकी निन्दा करें और न उन्हें कभी मारें। भगवान् रामने गुरुके आदेशानुसार जगत्‌के कल्याणके लिये भी जब ताड़का नामक एक राक्षसीको भी मारा था तो प्रायश्चित्त किया था।

—जीवन्मुक्त उसे कहते हैं जिसके हृदयमें पूर्ण शान्ति आ जाती है, आनन्दका भण्डार खुल जाता है तथा जिसका चित्त परमात्माके चरणोंमें लगा रहता है।

—संसार एक रङ्गभूमि है। जैसे रङ्गभूमिपर नाटकके पात्र अपना अपना वेश बदलकर आते हैं, वैसे ही इस संसारमें भी जीव वेश बदल-बदल कर आते हैं।

—ज्ञानी प्रत्येक बातको यथार्थ न समझकर भोगता है और अज्ञानी यथार्थ समझकर भोगता है। बस, इसीलिये तो ज्ञानीको कोई दुःख नहीं व्यापता और अज्ञानीको व्यापता है।

—तुम हृदयको बिल्कुल खाली कर दो, उसमें कुछ भी न रहने दो, तब उसमें भगवान् वास करेंगे और जो कुछ भी तुम्हारे मुँहसे निकलेगा, वही भगवान्‌की ओरसे निकलेगा। इस प्रसङ्गमें राधा और बाँसुरीके एक संवादकी कथा याद आती है। एक बार राधाने बाँसुरीसे पूछा—'बाँसुरी' तूने पूर्व जन्ममें ऐसे कौन-से सुकर्म किये थे जो आज तू भगवान्‌को इतनी प्यारी हो रही है कि वह सदा तुझे अपने होठोंपर ही लगाये रहते हैं, एवं तू उनका अधरामृतपान किया करती है? बाँसुरी बोली—'राधे! पूर्वजन्मकी बात तो मुझे कुछ याद नहीं। यहाँ तक कि मैं यह भी नहीं जानती कि पूर्वकालमें मेरा कोई जन्म था या नहीं। पर हाँ,

अब यह पता है कि मैं बाँसकी एक पोली हूँ । तू मेरे भीतर देख तो सही कि इसमें क्या है ?' राधाने बाँसुरीके भीतर दृष्टि डालकर कहा कि, "भीतर तो कुछ नहीं है ।" तब बाँसुरी बोली—'बस, जब मेरे भीतर कुछ भी नहीं है तो तू समझ ले कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, मेरे अन्दरसे जो विविध राग-रागिनियाँ निकलती हैं वह वास्तवमें भगवान्‌के ही अधरसे निकलती हैं ।' यह सुनकर राधा प्रसन्न हो गयी और उसकी आँखें खुल गईं ।

—हृदयके मैलको किस प्रकार दूर कर सकते हैं ? भगवान्‌की शरणमें जाकर, और किसी प्रकार नहीं ।

—अहंकारकी बात रबड़के उस गोलेके समान है, जिसे छोटे छोटे बच्चे अपने मुँहसे फुलाते हैं । ज्यों-ज्यों उस गोलेको फुलाते जाते हैं त्यों-ही-त्यों गोला फटनेकी दशाके समीप पहुँचता जाता है, वैसे ही मनुष्य भी ज्यों-ज्यों अपने अहंकारको बढ़ाता जाता है त्यों-त्यों वह सर्वनाशके समीप पहुँचता जाता है ।

—जो श्रद्धा और भक्तिसे भगवान्‌का आँचल पकड़ता है, भगवान् उसका सारा भार अपने कन्धेपर उठा लेते हैं और उसे तनिक भी कष्ट नहीं होने देते ।

—जबतक हृदयमें विकार है, भय है और अविश्वास है, तबतक श्रद्धा और भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती ।

—संस्कृतमें स्त्रीका नाम अबला प्रसिद्ध है, पर वह अबला है जितेन्द्रिय पुरुषके आगे, विषयासक्तके आगे नहीं । विषयासक्तोंके लिये तो वह महा सबला है ।

—जब किसी वस्तुकी इच्छा न हो तब जीवनकी भी इच्छा नहीं रहती।

—प्रारब्धसे शरीर अपने आप छूट जानेवाला है, यह समझकर जो सदा प्रसन्नचित्तसे मृत्युकी राह देखता है उसे ही ज्ञानी कहते हैं।

—इन्द्रियोंको और मनको किसी प्रकारकी रिश्वत देनेसे काम नहीं चल सकता। जैसे अग्निको घृत देनेसे वह और भी अधिकाधिक प्रज्वलित होती है वैसे ही ये इन्द्रियाँ भी जितनी अधिक उत्तेजना पाती हैं उतनी ही अधिक विषयासक्त होती हैं, तृप्त कदापि नहीं होतीं। यदि हम दूसरा जन्म नहीं लेना चाहते हैं और दुःखोंसे छुटकारा पाना चाहते हैं तो उन्हें मार ही देना होगा। पर साथ ही यह भी कभी न भूलना चाहिये कि इनको मारना कोई साधारण बात नहीं है। बड़ी कठिन तपस्या है।

—धर्म और अधर्म दोनोंका ही स्वरूप जानना चाहिये पर धर्म करना चाहिये, अधर्म नहीं।

—करने योग्य कार्यके न करनेसे और न करने योग्य कार्यके करनेसे तथा इन्द्रियोंका दमन न करनेसे मनुष्य पतित हो जाता है। यह भगवान् मनुका कथन है।

—शरणागतकी रक्षा करना क्षत्रियोंका कर्त्तव्य है।

—भीतरका जो सच्चिदानन्दस्वरूप है वह तत्कालके लिये दब तो जा सकता है, पर नष्ट नहीं हो सकता।

—किसीको भस्म करनेके लिये, किसीको मारनेके लिये भीतरसे जो क्रोधाग्नि निकलती है, उसमें भी साधारण अग्निके से ही गुण होते हैं। जैसे साधारण अग्नि जहाँ पैदा होती है, पहले वह उसी स्थानको जलाती है। वैसे ही क्रोधाग्नि भी जिसके हृदयमें पैदा होती है, पहले उसीके हृदयको जलाती और उसीको भस्म करती है।

—मन स्थिर नहीं, बुद्धि स्थिर नहीं और इन्द्रियाँ भी स्थिर नहीं। स्थिर तो केवल एक आत्मा है। यह कभी न भूलना चाहिये।

—अविद्या, कामना और कर्म—इन तीनोंके ही कारण जीव देह धारण करता है।

—गुरुसे श्रद्धा, भक्ति और नम्रताके द्वारा ज्ञान-लाभ करता जाय, यह शिष्यका अधिकार है।

—हम क्या चाहते हैं? ईश्वरका साक्षात्कार। क्यों? आत्मिक शान्तिके लिये। आत्मिक शान्ति क्यों चाहते हैं? दुःखोंसे छूटनेके लिये।

—अपने लिये तो कुछ न करे, पर संसारके कल्याणार्थ सब कुछ करे, यह साधु संन्यासीका लक्षण है।

—साधु-संन्यासी और त्यागीका यह लक्षण नहीं कि कोई किसीपर अन्याय और अत्याचार करे और वह कायरोंकी तरह चुपचाप बैठा सब देखता-सुनता रहे ।

—गुरुकी आज्ञाका कभी उल्लंघन न करना चाहिये । जहाँ उल्लंघन किया कि गुरु-शिष्यका सम्बन्ध-विच्छेद हुआ ।

—गुरुके लिये शिष्यके मनमें, नम्रता, वाणीमें जिज्ञासा और शरीरमें सेवाका भाव होना चाहिये ।

—हम गुरुकी सेवा खूब कर रहे हैं, जब यह भाव मनमें आ जाता है तो एक तो हिसावकी बात मनमें आती है और दूसरे चित्तमें अहंकार भी पैदा हो जाता है ।

—दूसरोंकी प्रशंसासे अपने गुणोंका और दूसरोंकी निन्दासे अपने अवगुणोंका विकास होता है ।

—जो निर्बल होता है, उसे आत्मज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंको ही वलिष्ठ बनानेकी ज़रूरत है ।

—अपनेको बड़ा समझकर किसीकी निन्दा न करे, यह घोर पाप है ।

—अहंकार एक ऐसी वस्तु है जो हमारे भीतर घुसकर भी हमें अपना पता नहीं देती अर्थात् अहंकार भीतर आ जानेपर भी हम अपने आपको अहंकारी नहीं समझते ।

—सबसे बड़ा अहंकार यह है कि अपने आपको अहंकारी न समझना और यह कहना कि अमुक व्यक्ति तो अहंकारी है और हम अहंकारी नहीं हैं।

—किसीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, आत्मस्तुति नहीं करनी चाहिये, और अहंकार भी नहीं करना चाहिये। यह सब तो ठीक है; पर इसके साथही हम यह काम नहीं कर रहे हैं, यह न समझना भी बहुत ज़रूरी है।

—अमुक व्यक्ति परनिन्दा कर रहा है, यह कहना या समझना भी परनिन्दा ही है।

—वचन कैसा होना चाहिये ? जो दूसरोंके लिये दुखदायी न हो, प्रशंसात्मक हो, सत्य हो तथा दूसरोंका कल्याण करनेवाला हो।

—पहले अपनी खराबियाँ दूर करो, फिर दूसरोंके लिये कुछ करनेका अधिकार प्राप्त होगा।

—अपनेसे जो कुछ सेवा बन पड़े, करते जाओ। दूसरोंसे यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि तुम कुछ नहीं कर रहे हो और हम सब कुछ कर रहे हैं।

—बड़े आदमी अगर कोई बड़ा काम करते हैं तो प्रायः छोटे आदमी फौरन कह दिया करते हैं कि अमुक सज्जन बहुत बड़े हैं, इसलिये उनसे ऐसा बड़ा काम बन पड़ा है, लेकिन हम तो बहुत छोटे हैं, हमसे नहीं बन सकता; पर जब बड़े कोई छोटा काम कर बैठते हैं तो छोटे फौरन ही उनका अनुसरण

करने दौड़ पड़ते हैं । तब तो नहीं कहते कि यह भी उन्हींके योग्य है।

—जो किसीको कन्धेपर चढ़ाकर पार करा देता है उससे हजार गुना अच्छा वह है जो उसे स्वयं ही पार होना सिखा देता है।

—गुरुकी सेवाका खयाल शिष्य करे और शिष्यके कल्याणका गुरु करे।

—शरणागत चार प्रकारके होते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी, इसी प्रकार शिष्य, जिज्ञासु, ज्ञानी और गुरु भी चार प्रकारके कहे हैं।

—जबतक इच्छा है तबतक दुःख ज़रूर है। जब इच्छा छूट गयी तो दुःख भी छूट गया।

—शिष्यके अधिकारको जानकर गुरुका कर्तव्य है कि उसे योग्य श्रेणीमें लेजाकर आगे बढ़ावे।

—जिसमें कोई वासना नहीं रहती उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

—आत्माका स्वभाव आनन्द है, दुःख नहीं।

—चिन्ता चितासे भी बढ़कर है। चिता तो मरे हुएको जलाती है सो भी बाहरकी अग्निकी सहायतासे;पर चिन्ता जीवितको ही भस्म कर डालती है वह भी किसी बाहरी अग्निकी सहायताके बिना ही।

—जिनका हृदय दर्पणकी तरह निर्मल हो जाता है, वे जब गुरुके सम्मुख जाकर बैठते हैं तो उनके भीतर अपने आप ही समस्त ज्ञान प्रकट हो जाता है और वे अनायास ही तर जाते हैं।

—मनका स्वभाव भी बन्दरके समान है। जैसे बन्दर एक वृक्षसे दूसरेपर और दूसरेसे तीसरेपर कूदता रहता है, इसी प्रकार मनरूपी बन्दर भी इधर उधर भटकता ही फिरता है। साधारण बन्दर तो ऐसे वृक्षोंपर बैठता और खेलता है जो फल फूल और आराम देनेवाले होते हैं; लेकिन यह मनरूपी बन्दर तो सदा विषयरूपी काँटेदार वृक्षोंपर ही खेलता है जो सुखदायक नहीं बल्कि घोर दुःखदायक होते हैं, अतएव मनरूपी बन्दरको भगवान्‌की अविचल भक्तिरूपी डोरसे बाँधकर भगवान्‌के चरणोंमें लगाये रखना ही श्रेयस्कर है। इसीमें कल्याण है।

—पशु चार पाँव और एक पूँछवाले जानवरोंको ही नहीं कहते; बल्कि उस दो हाथ और दो पाँववाले उस मनुष्य नामधारी जीवको भी कहते हैं, जो अज्ञानके भीषण पाशमें बँधा रहता है।

—ज्ञानसे पूर्व जन्मोंके कर्मोंका नाश होकर पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है और हृदयमें सच्चिदानन्दका साम्राज्य स्थापित होता है।

—पैसा पास न हो, पर होनेका लोगोंको सन्देह हो तो भी चोर-डाकू आकर कष्ट देते हैं और यहाँतक कि कभी-कभी तो जानसे भी मार डालते हैं। परन्तु कई बार ऐसा भी देखा और सुना गया है कि अपने पास न तो पैसा है और न किसीको इसका सन्देह ही है, पर अपने पास किसी ऐसे सज्जनके आ जानेसे, जिसके पास पैसा है या लोगोंको उसके पास पैसा होनेका सन्देह है, भारी कष्ट उठाना पड़ता है, यहाँतक कि मृत्युतक

हो जाती है । इस सम्बन्धमें हमें अपने एक गुरुभाईकी कथा–महान् दुःखद कथा–याद आती है । हम उसे संक्षेपसे यहाँ सुना देते हैं:–

–हमारे गुरुभाई बड़े ही योग्य पुरुष थे । वह कानपुरके पास एक जंगलमें रहते थे । कानपुरमें एक धनाढ्य मारवाड़ी आया और उसे हमारे गुरुभाईके दर्शनका चाव पैदा हुआ । वह सपत्नीक वहाँ गया और उनसे मिला । बातें करते-करते जब काफी रात बीत गयी तो वह हमारे गुरुभाईके पाससे उठकर पत्नीके सहित पासकी ही एक कोठरीमें चला गया । इतनेमें कुछ डाकू जो कानपुरसे ही सेठजीके पीछे लगे हुए थे, सेठजीके पास आ धमके और लगे मालमत्ता माँगने । पर उनके पास वहाँ कुछ भी नहीं था । जब उनसे कुछ प्राप्त नहीं हुआ तो वह उसे और उसकी स्त्रीको बहुत बुरी तरह पीटने लगे । रोना सुनकर हमारे गुरुभाई भी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने देखा कि पन्नालाल नामक एक अपना देखा हुआ आदमी भी उन डाकुओंमें शामिल है । उन्होंने कहा–"पन्नालाल ! तुम भी ऐसा काम किया करते हो ? बस, डाकू यह विचारकर कि यह साधु तो सवेरे हमें जरूर पकड़वा देगा, क्योंकि हमारे एक साथीको जानता है–उस मारवाड़ी दम्पतिको छोड़कर जो कि उस समय अधमरा सा हो चुका था, स्वामीजीपर टूट पड़े और उनका काम-तमाम कर दिया । डाकुओंने हमारे गुरुभाईको मारकर ही नहीं छोड़ा बल्कि उनकी लाशतकको लापता कर दिया । जब प्रातःकाल हुआ तो कानपुरभरमें हाहाकार

मच गया। पुलिसने तहकीकात आरम्भ की, पर कुछ पता नहीं चला। खैर, यह पैसेवालेके संगका फल है।

—संसारमें बड़ी मुसीबत यह है कि जिस दुःखको दूर करनेके लिये हम किसी साधनका उपयोग करते हैं, वही साधन आगे चलकर हमारे लिये दुःखका कारण बन जाता है, जैसे ऋणआदि।

—श्रीमद्भागवतमें कहा है कि एक कर्मसे दूसरे कर्मका नाश कभी नहीं हो सकता। कर्मोंका नाश ज्ञानाग्निसे होता है।

—जो लोग यह समझते हैं कि हमारे पुण्य हमारे पापोंका नाश कर देंगे, वह भूलते हैं। पापका फल भी जरूर भोगना पड़ता है और पुण्यका भी। पुण्यसे पापका नाश नहीं होता और पापसे पुण्यका नहीं होता।

—ये दश इन्द्रियाँ दश दिशाओंकी ओर जानेवाले दश घोड़े हैं। जिस ओर एक जाता है, दूसरा उस ओर नहीं जाता— इन दश इन्द्रियोंने हमपर अपना अधिकार जमा रक्खा है, हमें अपने बन्धनमें बाँध रखा है, हम इनका इस प्रकारसे दमन या नाश करें, जिससे इनका सारा प्रभुत्व नष्ट हो जाय और ये स्वयं सर्वथा हमारे अधीन हो जायँ।

—गुरुका काम शिष्यको अपने सदृश बना लेना है।

—छोटी चीजको बड़ी समझकर उससे डर जाय, यह भी बेवकूफी है; और बड़ी चीजको छोटी समझकर उसके लिये अनुचित साहस करे, यह भी ठीक नहीं है।

–भगवान् आत्मरूप और परमात्मरूप दोनों हैं ।

–जिसे खानेका भी ठिकाना नहीं है, जो भीख माँगकर खाता है, जिसके पास ओढ़नेको कपड़ा और रहनेको स्थान भी नहीं है, विषय उसे भी आ दबाता है और व्याकुल कर देता है । विषयने विश्वामित्र जैसे तपोनिष्ठ ऋषितकको तो एक बार धर दबाया था फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? सारांश यह कि विषय बहुत बड़ा शत्रु है, इससे जहाँतक हो सके सदा बचकर ही रहना चाहिये ।

–जब मनुष्य विषयसे थक जाता है, हार जाता है तो स्वभावतः ही उसे उससे घृणा होने लगती है, परन्तु यदि पहलेसे ही घृणा होने लगे, तो फिर क्या कहना है ?

–जब एक बार पापका अनुभव कर लिया, तब फिर सदा उससे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

–पापका अनुभव दुःखसे होता है ।

–योगाभ्यासका अभिप्राय यह है कि जो चीज (विषय-वासना) अपनी ओर खींचनेवाली है वह न खींच सके ।

–अरण्यमें जाकर रहनेका उद्देश्य यह होता है कि वहाँ रहकर मनको इस प्रकार वशमें कर लिया जाय कि फिर जब जनतामें आकर लोगोंको सत्यका सन्देश सुनाने लगे तो संसारकी कोई भी वस्तु अपनी ओर न खींच सके ।

–जो अपने कपड़ोंको अपने हाथसे उतारकर फेंक देता है, उसे अवधूत नहीं कहते, बल्कि अवधूत उसे कहते हैं जिसे

कपड़े स्वयं छोड़ देते हैं और ध्यान या साधनामें लगे रहनेके कारण उसे इस बातका कुछ पता ही नहीं लगता।

—प्रारब्धानुसार जबतक शरीर है तबतक रहना तो है, पर किसी कामनासे नहीं, किसी वासनासे नहीं।

—त्यागीके सम्बन्धमें कहा है कि वह स्त्री और पुरुषमें कोई भेद न समझे, सबको समान जाने।

—जिसे स्त्री, पुरुष और वृक्षादि भी एक ही परमात्मरूप दिखायी देते हैं उसे किसी प्रकारका भय नहीं है।

—विद्वान् केवल पुस्तकें रटनेवालेका नाम नहीं, हृदयमें भगवत्-साक्षात्कार करनेवालेका नाम है।

—गृहस्थीमें रहते हुए प्रारब्ध-कर्मसे प्राप्त फलको भोगता हुआ जो निर्लिप्त रहता है, उसे ही सद्गति मिलती है।

—भगवान्‌के शरणागत होकर उसकी भक्तिकरते हुए उसके शासनमें रहते हुए जो उसे अपना सारथी बनाता है, भगवान् उसे ज़रूर पार लगा देता है।

—जब मनुष्य इन्द्रियोंके शिथिल हो जानेसे रुग्ण हो जाता है तो कहता है कि भविष्यमें मैं ऐसा कोई कुकर्म नहीं करूँगा, जिससे फिर इस दशाको प्राप्त होना पड़े; पर ज्यों ही वह भलाचंगा हो जाता है कि झट्से फिर उसी काममें लग जाता है जिससे कि वह उस दशाको प्राप्त हुआ था।

—जब इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, थक गयीं, मुरझा गयीं, तो फिर

विषयासक्ति न भी रही तो क्या ? फिर वैराग्य पैदा हुआ तो क्या ?

—इन्द्रियाँ रहें; पर हमारे अधीन हो कर रहें न कि हमें अपने अधीन रखकर।

—जो सकाम कर्म करते हैं उन्हें कर्मानुसार स्वर्ग मिलता तो ज़रूर है; पर रहना वहाँ भी बन्धनमें ही पड़ता है, और जब सत्कर्म समाप्त हो जाते हैं तो फिर जन्म लेना पड़ता है। जैसे देवराज इन्द्रको भी एक बार चूहेतकका जन्म लेना पड़ा था।

—हमारे भीतर जो काम, क्रोध और लोभादि शत्रु हैं वे बड़े प्रबल हैं। वे हमें मोक्षके दुर्गमें घुसने नहीं देते और सदा मोक्षमार्गसे रोकते ही रहते हैं।

—अपनी मायाशक्तिको केवल भगवान् ही हटा सकते हैं, मनुष्य नहीं। मनुष्यमें भला ऐसी शक्ति ही कहाँ है ? परन्तु हाँ, जब नर नारायणको सारथी बना लेता है तो उसकी माया अपने आप हट जाती है।

—नरको नारायण बनना है। जबतक नर नारायण नहीं बनेगा और नर ही रहेगा, तबतक नरकमें ही पड़ा रहेगा।

—कोई मरा हुआ प्राणी रोनेसे जीवित नहीं हो सकता और बीमार चिन्तासे अच्छा नहीं हो सकता, इसलिये किसीकी मृत्युपर रोना और बीमारके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।

—चिन्ता करनेसे विचारका नाश होता है और विचारका नाश होनेसे मनमें विकार उत्पन्न होता है, फिर विकारसे अशान्ति

तथा अशान्तिसे दुःख मिलता तथा कर्तव्य भी बिगड़ता है, इसलिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

--कामान्ध मनुष्य पाप और पुण्यको जानते हुए भी नहीं मानता।

—जिसप्रकार शरीर धीरे धीरे बढ़ता है, उसी प्रकार अभ्यास भी धीरे धीरे ही बढ़ता है।

—जो ज्ञानी होते हैं, विचारवान् होते हैं, वे किसीके लिये शोक नहीं करते।

—अपने शरीरमें जो पीड़ा हो उसे प्रारब्ध कर्मानुसार आयी हुई, जानकर शान्तिसे सहन करना चाहिये।

—संसारमें नित्य ही कितने जीव मरते रहते हैं, पर उन सबके लिये तो हम रोते नहीं हैं। रोते तो केवल उसीके लिये हैं, जिसके साथ हमारी कुछ ममता होती है, ममता मोहके कारण होती है, इसलिये सारे दुःखोंकी जड़ ममताको ही समझना चाहिये।

—जहाँ ममता नहीं है वहाँ दुःख नहीं है। जहाँ ममता है वहीं दुःख है।

—अगर हम अशान्ति नहीं चाहते तो ममताका त्याग करना ही होगा। उससे सम्बन्ध-विच्छेद करना ही पड़ेगा।

—जो मरेको रोता नहीं और जीवितकी चिन्ता नहीं करता वही ज्ञानी है।

—शरीरको कोई भले ही मार डाले, आत्माको कोई भी नहीं मार सकता।

—अपना कर्तव्य करते जाओ, फल अपने आप ही मिलेगा।

—शरीरको कोई दुःख होनेसे मन और बुद्धिको कोई दुःख न होना चाहिये। पर होता यह है कि जरा-सा भी शारीरिक कष्ट होनेसे हम रोने वैठ जाते हैं।

—परमात्मा और जीवात्मा एक है।

—अज्ञानी होते हुए भी अपने आपको ज्ञानी समझना जीवका-स्वभाव ही है।

—ज्ञानीका लक्षण कर्तव्य छोड़ देना कदापि नहीं है। अर्थात् ज्ञानी उसे कहते हैं, जो अपने कर्तव्यको नहीं छोड़ता।

—जो ज्ञानी वन गये, जो मूलस्वरूपमें पहुँच गये, जो नारायण बन गये, वे नाश हो जानेवाली सांसारिक वस्तुओंके पीछे रोते नहीं हैं।

—जिसे शान्ति नहीं, उसे सुख कहाँ?

—शान्ति और आनन्द एक चीज़ है तथा अशान्ति और आनन्द दूसरी चीज़।

—संसारमें जो क्षणिक पदार्थ हैं, वे शोचके योग्य नहीं हैं।

—मनके एकाग्रतासे किसी ओर लग जानेपर दूसरी चीज़ोंकी सुध वह भूल जाता है।

—हम भगवत्-साक्षात्कार भी चाहें और सांसारिक चिन्ताओं-को भी न छोड़ें, यह कैसे हो सकता है ?

—ससारकी प्रत्येक वस्तुमें परमात्माका स्वरूप देखते रहनेसे हृदय-से मोह अपने आपही भाग जाता है, और मोहके चले जानेसे हृदयकी अशान्ति जाती रहती है तथा सच्चिदानन्दका भण्डार खुल जाता है।

—शरीर भी जड़ है और मन भी, पर शरीर मनकी अपेक्षा अधिक जड़ है, इसलिये मन स्वभाविक ही शरीरको जीत सकता है। पर जहाँ मनको अपनी ताकतका पता नहीं होता और वह अपना कर्तव्य पालन नहीं करता, वहाँ शरीर मनको जीत कर उसे अपना दास बना लेता है।

—चाहे कोई कितनी भी शक्ति रखता हो, पर तबतक उससे कोई लाभ नहीं है जबतक वह उसका उपयोग नहीं करता।

—हम चेतन और जगत् जड़ हैं, यह ठीक है; पर कब ? जब हम चेतनसे काम लें तभी ? यदि हम इस जड़से भी जड़ बन बैठें तो जड़ निश्चय ही हमको दबा सकता है।

—मुर्देसे भी मुर्दा होकर रहे और शिकायत करे कि दुनिया हमे मान नहीं देती और तंग करती है। यह कितनी मूर्खता है ? दुनियाका इसमें क्या दोष ?

—शरीरके ऊपर इन्द्रियोंका अधिकार है, इन्द्रियोंके ऊपर मनका और मनके ऊपर बुद्धिका।

—जैसे किसी मकानके गिर जानेसे कोई यह नहीं कहता कि मकानमालिक मर गया, उसी प्रकार शरीरके गिर जानेसे आत्मा मर गया है यह कहना ठीक नहीं है। ध्यानमें रहना चाहिये कि आत्मा कभी मर सकनेवाली चीज नहीं है।

—जो वस्तु नहीं है उसकी सृष्टि कभी नहीं हो सकती; और जो है उसका नाश कभी नहीं हो सकता।

—वस्तु सत्य और गुण मिथ्या है।

—विम्बसे प्रतिविम्बका अस्तित्व है। विम्बके विना प्रतिविम्ब नहीं रह सकता, परन्तु प्रतिविम्ब विना विम्ब रह सकता है।

—किसी वस्तुका रूपान्तर हो सकता है, नामान्तर हो सकता है, स्थानान्तर हो सकता है, पर नाश कभी नहीं हो सकता।

—आत्मा नित्य अस्तित्ववाली वस्तु है। इसलिये उसका कभी नाश नहीं हो सकता।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तकें

गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित, मोटाटाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द. ५७० पृष्ठ ४ बहुरंगे चित्र 1)

गीता–प्रायः सभी विषय 1) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≋) सजिल्द ... ॥।=)

गीता–साधारणभाषाटीका त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित. सचित्र ३५२ पृष्ठ मूल्य =)॥ सजिल्द ... ... ≋)॥

गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य ।–) सजिल्द ।≋)

गीता–मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द =)

गीता–मूल, ताबीजी साइज, २ × २ ½ इञ्ची सजिल्द =)

प्रेम-योग, सचित्र, ले०–श्रीवियोगी हरिजी ४१८ पृष्ठ 1) सजिल्द 1॥)

तत्त्वचिन्तामणि, सचित्र ले०–श्रीजयदयालजी गोयन्दका, ॥।–) सजिल्द 1)

भक्त-बालक सचित्र ... ... ।–)

भक्त-नारी सचित्र ... ... ।–)

मानव-धर्म ... ... ≋)

साधनपथ ... ... =)॥

वेदान्त-छन्दावली–लेखक स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी =)॥

गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग ... –)॥

श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय .. –)॥

भगवान् क्या हैं ? ... ... –)

एक सन्तका अनुभव ... ... –)

प्रश्नोत्तरी श्रीशंकराचार्यजीकृत भाषासहित ...)॥

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये।